Inspira- Journal of Modern Management & Entrepreneurship (JMME)
ISSN : 2231–167X, Impact Factor: 6.889, Volume 12, No. 02, April-June, 2022, pp. 35-39

पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में न्यायालयों की भूमिकाः एक अध्ययन

डॉ. राजश्री चौधरी*

सार

इस सम्पूर्ण जैव जगत में जीव मात्र की उपस्थिति पर एक सृष्टि संचालक शक्ति विद्यमान है। हम सभी विश्ववासी प्राणी ऐसी अदृश्य संचालक सत्ता को विभिन्न रूपों, कल्पनाओं व मान्यताओं के अनुसार ईश्वर नाम से मानते हुए हमारे जीवित रहने के प्रति आभार स्वरूप इस परम शक्ति में आस्था रखते हैं। हमारी प्राचीनतम स्थितियों का यदि ठीक से जायजा लिया जाये तब एक ही सारभूत तथ्य हमें संतुष्ट कर पाता है। हम जिस परिवेश में रहते हैं वह पूरा परिवेश हमारा पर्यावरण है।

शब्द कुंजी : *पर्यावरण संरक्षण, वन–वनस्पतियां, वनौषधियां, ऋतु चक्र, जैव मण्डल।*

प्रस्तावना

परि+आवरण = पर्यावरण, अर्थात् जिसने हमें हर और से अपनी परिधि में परिधित कर रखा है और हमारी भौतिक–अभौतिक समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति जिसके माध्यम से हम कर पा रहे है, वस्तुतः ऐसा आवरण ही हमारा पर्यावरण है। अंतरिक्ष, आकाश, सूर्य, चन्द्र, दिन–रात, वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी, वन–वनस्पतियां, पर्वत, झरने, नदियां, जलाशय, सागर, वनौषधियां, कृषि एवं मानव समुदाय सहित ऋतु चक्र व पशु–पक्षी, अन्न, वस्त्र कीट–पतंगे व वर्षा इत्यादि समस्त तत्व हमारे पर्यावरण के वृहद् समुच्चय में निहित है। ''अन्य जीवित प्राणियों की तरह मानव को भी द्रव्य या पदार्थ और शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। मानव अन्य प्राणियों की तरह एक प्राणी है। अतः अन्य सभी जीवित प्राणियों की तरह इसे भी अपने जीवन की अपेक्षाओं के अनुसार प्राकृतिक पदार्थों को कृत्रिम क्रिया से तैयार करना पड़ता है। इस प्रकार इनकी जीवाणुओं में परिवर्तित करने की अपेक्षायें उनके द्वारा श्वसन की क्रिया द्वारा ग्रहण की गयी वायु और उनके भोजन के रूप में ग्रहण किये जल और मुखेन्द्रिय द्वारा ग्रहण करने वाले भोजन से पूरी होती है।''[1]

अर्थात् हमारी पृथ्वी पर व्याप्त पर्यावरण प्रकृति की सर्वोतम निधियों से हमें वो सब उपलब्ध करवाता रहता है, हमें जिनकी आवश्यकताऐं अक्षुण्ण रहती है। हमारा पर्यावरण ही हम जैव मण्डल के समस्त जीवधारियों के लिए विकास का नियामक है। यद्यपि निरन्तर विकास की प्राप्ति व विकास से संचय की दृष्वृत्तियों ने मनुष्य वर्ग के जीवधारियों में एकाधिक रूप से होड़ पैदा कर दी, यह होड़ शनैः–शनैः मनुष्य की महत्वाकांक्षाओं में निरन्तर वृद्धि करती हुई अपने एक विनाशक स्वरूप में वैश्विक प्रदूषण के नाम से कुख्यात हो गई, और इसने सम्पूर्ण विश्व में पर्यावरण जैसी प्राकृत सत्ता पर अपना आक्रान्ता स्वरूप दिखाना प्रारम्भ कर दिया। हिन्दू धर्म

---

* सह आचार्य, विधि महाविद्यालय, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान।

1 फैन्क्वायस रामाडे इकॉलोजी ऑफ नेचुरल रिसोर्सेज (1984) पृ. 13

ग्रन्थों, बाइबिल, कुरान इत्यादि में जिस प्रकृति को पूज्या माना है आज उसी पूज्या के प्रति हमारा व्यवहार असंभत हो चुका है, इस असंभत शैली ने विनाश को न्यौता दे दिया है। चरक संहिता (चौथी–पांचवी सदी ई.पू.) ने प्रकृति की महत्ता स्पष्ट करते हुए लिखा कि'' जब तक यह पृथ्वी प्रकृति (वन्य पौधों और पशुओं) से परिपूर्ण है, मानव जाति फलती–फूलती रहेगी।''[1] संभवतया विश्व की समस्त प्राचीन सभ्यताओं की सांस्कृतिक निधियों में प्रकृति से प्रेम करने के संबंध में विधियां रही, इनमें से कई विधियों पर आधारित नवीनतम पर्यावरण विधियां आज विश्व के कई राष्ट्रों के अपने पारिस्थितिकी तंत्र के अनुरूप एवं अन्य राष्ट्रों की जलवायु के अनुसार अपने कर्म में प्रचलित है। ''गंगा को माँ तथा गाय को माता का रूप माना गया है।''[2] यहां जिस मान्यता को प्रतिपादित किया गया वह एक विधि ही है। इसी प्रकार से मत्स्यपुराण मानता है कि ''स्वर्ग जाने हेतु पीपल, नीम आदि वृक्षों को प्रश्रय दिया जाये।''[3] अर्थात् वनस्पति के विस्तारण के बिना विशुद्ध प्राणवायु का अभाव उत्पन्न होकर, प्राणियों के लिए नरक की स्थिति बना देगा, और विगत वर्षों से ऐसा ही होता रहा है। जिस कारण आज ऑक्सीजन की विशुद्धता धूमिल हो गई है। पर्यावरण की महत्ता को जीवन से अर्न्तसम्बंधित अनुभूत किये जाने के पश्चात् भारत में पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम 1986 की धारा 2 (क) पर्यावरण को विस्तृत तौर परिभाषित करती हैं। लगातार हो रहे जलवायु परिवर्तन का प्रमुख कारण हमारी पर्यावरणीय व्यवस्था में हो चुके सुराख हैं। ये सुराख ओजोन छिद्र के रूप में आंका जाता है, ''ओजोन छिद्र के प्रभाव को जून, 1993 में।[3] मापा गया था।''[4] यह ओजोन छिद्र पूरे विश्व में खतरों का एक खतरनाक सैलाब लेकर एक दिन विनाश लीला रचाऐगा, ऐसा भय सर्वव्यापी है।

ओजोन परत क्षरित कारक तत्वों पर मान्ट्रियल प्रॉटोकाल 1987 में वियना अभिसमय में गंभीर चर्चा हुई और 56 देशों द्वारा इस चर्चा पर सहमति बनी। इसी के तहत पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए ओजोन अवक्षयकारी पदार्थों के विनियमन के लिए ओजोन अवक्षयकारी पदार्थ (विनियमन और निमन्त्रण) नियम, 2000 अधिसूचित किया गया है। जो 19 जुलाई, 2000 से प्रवृत हो गये है। न्यायालयी अधिक्षेत्र में आने वाले इन नियमों की अवहेलना पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 के तहत दण्डनीय अपराध है।'' 19 नवम्बर, 1986 से लागू इस अधिनियम के प्रावधानों के प्रथम उल्लंघन पर 5 वर्ष की सजा या एक लाख रूपया जुर्माना या दोनों दिया जा सकता है।[5] यदि पर्यावरण से संबंधित न्याय क्षेत्र की बात करें तो भारत में पर्यावरणीय न्यायव्यवस्था तो ई. पूर्व लगभग के समय में ही थी। हमारे वेद, पुराण, उपनिषद्ों पर्यावरण की शाश्वत पैरवी देखने को मिलती है। ये ग्रन्थ तत्कालीन भारत खण्ड के न्यायशास्त्रों की श्रेणी में भी माने जाते थे। ''कौटिल्य के अर्थशास्त्र में पर्यावरण संरक्षण के लिए प्रावधानों का वर्णन मिलता है।''[6] तत्पश्चात् मध्ययुगीन भारत में इस क्षेत्र पर आंशिक योगदानमयी कार्य देखने को मिला। ब्रिटिश भारत में इस सम्बंध में प्रयास हुए जिनमें ब्रिटिशों की औपनिवेशिक शोषण मंशा ज्यादा रही फिर भी जल प्रदूषण, वन्य जीवन एवं भूमि के प्रयोग से सम्बंधित नियमों को ब्रिटिश भारत में बतौर न्यायिक विधान के लागू किया जाना पर्यावरण संरक्षण क्षेत्र में न्यायालयों की प्राचीन भूमिका को आधार देता ही है। इसके पश्चात्वर्ती भारत के आजादी के बाद में नवीन परिदृश्यों को देखते हुए पर्यावरणनीतियों को पंचवर्षीय योजनाओं के तहत प्रवृत किया जाना उचित समझा गया। इनसे पर्यावरण संरक्षण के संबंध में आने वाली चुनौतियों से रूबरू हुआ गया। आर्थिक, पारिस्थितिकी आधार पर मूल्यांकन हुआ। 1970 का दशक इस मामले में अति महत्वपूर्ण रहा। ''भारत में 1970 के दशक की नीतियां स्टाकहोम कान्फ्रेन्स के निर्णयों से पूर्णतः प्रभावित है।

---

1 चरक संहिता

2 वर्षापुराण, ओ.पी. द्विवेदी कृत 'वर्ल्ड रेलिजन एण्ड इन्वायर्न्मेण्ट, 1989 पृ 176 से

3 मत्स्यपुराण, – वही – पृ. 172 से

4 Wash, Past, June 29, 1993 at A3

5 पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 से

6 जे.बी. लाल; इण्डिया स फारेस्ट्सः मिथ एण्ड रियल्टी (नटराज, देहरादून, 1989) पृ. 15–17

''सन् 1976 में संविधान में अनु. 48.।और अनु. 51.।संविधान के 42वें संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा जोड़े गये। इसके साथ ही वन्य जीवन (संरक्षण) अधिनियम 1972, जल (प्रदूषण निवारण एवं निमन्त्रण) अधिनियम; 1974 और जल (प्रदूषण नियंत्रण) उपकर अधिनियम; 1977 पारित किये गये।''[1] सरकार ने केन्द्र में पर्यावरण विभाग, पर्यावरण योजना पर राष्ट्रीय समिति तथा अनेक अन्य समितियों की स्थापना की। प्रशासनिक रूप से पर्यावरण संरक्षण के नियमों की अनुपालना अनिवार्यतः मानी गई। तिवारी समिति में अनेक विधायी उपायों की सिफारिशें की जिनसे कि हमारा राष्ट्रीय पर्यावरण चहुं ओर से संरक्षित व संवर्धित हो सकने में सक्षम हो सके।'' सन् 1988 में घोषित राष्ट्रीय वन नीति में पारिस्थितिकीय संतुलन के संरक्षण एवं पुनःस्थापना के माध्यम से पर्यावरणीय स्थिरता कायम रखने की घोषणा की गयी।''[2]

पर्यावरण प्रदूषण हेतु उपचारा एवं न्यायालय

भारतीय न्यायिक परिक्षेत्र में पर्यावरण प्रदूषण के उपचारों के लिए, कॉमन लॉउपचार, कानूनी उपचार और सांविधानिक उपचार संयुक्त भूमिका में दिखते हैं।

- भारत में कॉमन लॉ संविधान के अनुच्छेद 372 के अधी प्रवृत्त बनी हुई है जब तक कि इसको कानून द्वारा उपांतारित, परिवर्तित या निसरित नहीं कर दिया जाता है। पर्यावरण प्रदूषण के विरूद्ध कॉमन लॉ उपचार अपकृत्य विधि के अन्तर्गत उपलब्ध है। अपकृत्य सिविल दोष है। किसी भी अपकृत्यिक कार्य की परिणित सम्पत्ति, देह या किसी व्यक्ति की ख्याति की क्षति में होती है और व्यथित व्यक्ति नुकसानी, प्रतिकर या व्यादेश अथवा दोनों का दावा कर सकता है।
- लोक न्यूसेन्स, कि एक उपताप है, के संबंध में अपराध होने की दशा में न्यायालय भारतीय दण्ड संहिता की धारा 268 के अन्तर्गत अपने विवेक पर निर्णय लेने में सक्षम है। इस संबंध में कुछ महत्वपूर्ण मामलों में माननीय न्यायलयों के कुछ महत्वपूर्ण निर्णय इस प्रकार से है–

दिन–रात सभी समय घण्टी बजाना,[3] कॉटन मिल का धुआं और शोर[4], दृष्टिकोण का व्यवधान[5] खिड़की से सीसा गिरना[6], पंक्ति के निर्माण द्वारा व्यवधान[7] खदान से धूल तथा स्पन्दन[8] तथा पर्यावरण प्रदूषण[9] इत्यादि कुछ ऐसे महत्वपूर्ण मसले होते है जिनसे पीड़ित पक्ष यदि न्यायिक शरण में पहुंचता है और वहां पर पीड़ित की पीड़ा स्पष्ट होती है तो तत्संबंध में न्यायालय अपना विवेकपूर्ण निर्णय सुनाता है।

''भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धारा 290 में कहा गया है कि जो कोई ऐसे मामले में न्यूसेंस करेगा जो इस संहिता द्वारा अन्यथा दण्डनीय नहीं है, वह जुर्माने से जो दौ सौ रूपये तक का हो सकेगा, दण्डित किया जाएगा।''[10] न्यायालय द्वारा लोक उपताप के दोष सिद्ध होने की अवस्था में कठोर आर्थिक दण्ड या अन्य किसी प्रकार के जुर्माने के प्रावधानों से पर्यावरण की स्वतन्त्रता चाहने वाले लोगों को राहत पहुंचती है, यह सर्वसिद्ध है। भारतीय संविधान न्यायालयों को पर्यावरणीय परिक्षेत्र में हो रहे अपराध–संगत कर्मों पर कठोर कार्यवाही के निर्देश प्रदत्त किये है। न्याय व्यवस्था द्वारा पर्यावरणीय विषयों या अन्य विषय जिनका अन्ततः संबंध

---

1 डॉ. अनिरूद्ध प्रसाद, पर्यावरण एवं पर्यावरणीय संरक्षण विधि की रूप रेखा, पृ.सं. 197 से

2 डॉ. अनिरूद्ध प्रसाद – वही – पृ. सं. 198 से

3 विनफील्ड ऑन टाट्स; 7वां संस्करण; पृ. 193

4 दि लैण्ड मारगेज बैंक ऑफ इण्डिया बनाम अहमद भाई (1983) आई.एल.आर. 8 मुम्बई 35

5 कैंपवेल बनाम पैडिंग्टन कारपोरेशन, (1911) 1 के.बी. 323.

6 लीउज बनाम एगस्टन; (1943) 1 के.ब. 323.

7 डायर बनाम मैन्सफील्ड, (1946) 1 के.बी. 433.

8 एटॉर्नी जनरल बनाम पी.वाई.ए. कैरीज, (1957) आल.ई.आ. 894; के. रामचन्द्र भाया बनाम डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट, (1985) कर्नाटक एल.जे. 289.

9 म्यूनिसिपल काउंसिल रतलाम बनाम वर्धोचन्द्र, ए. आई. आर. 1980 एस.सी. 1622.

10 डॉ. जय जय राम उपाध्याय, पर्यावरण विधि, फोर्थ एडिसन, पृ. 118 से

पर्यावरण से होता है, के संबंध में स्व–विवेक व परिस्थितिजन्य दोनों ही प्रकार के निर्णयों का अधिकार होने से पर्यावरण संबंधी वादों का सामुचित सुलह संभव हुआ। लोक न्यूसेन्स से जनसामान्य के पर्यावरणीय अधिकार विनिष्ट होते है। अतः इस संबंध में उपचार भी उपलब्ध है। यथा– (1) ''सिविल कार्यवाही''[1], (2) ''दांडिक कार्यवाही''[2] एवं दांडिक अभियोजन। उपताप संबंध में ''रामराज सिंह बनाम बाबू लाल''[3] नामक वाद में न्यायालय में अति संवेदनशील रूप से निर्णय पारित करते हुए सम्प्रेक्षण किया, औद्योगिक क्षेत्र में निवास करने वाला यह दावा नहीं कर सकता है कि उसके लिये ताजी हवा आवश्यक है।'' न्यायालय यह समझते हुए निर्णय देता है ''कि क्या पारिवादित उपहति अनुयोज्य उपताप के समान है कि नहीं, वहां स्पष्ट या व्यापक कसौटी को लागू नहीं किया जा सकता है। राम लाल बनाम मुस्तफाबाद ऑयल एण्ड कॉटन गिनिंग फैक्टरी मामले में,[4] इसी अनुयोज्य उपताप संबंध में टेकचन्द्र न्यायमूर्ति द्वारा निर्णय सुनाया गया। पूर्णदायित्व के निर्णय का प्रतिपादन उच्चतम न्यायालय द्वारा एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ[5] के वाद में किया गया है। पर्यावरण प्रदूषण के मामलों में न्यायालय अपने पूर्व में सुनाये गए निर्णयों व मामलों पर अपना विशेष अध्ययन रखते हुए नवीनतम किसी ऐसे ही मामले को सुनवाई करते समय अपने पुराने निर्णयों व वादों का हवाला देकर मामलों को निष्प्रित करने का कार्य संपाइदत करते है। ''इण्डियन कौंसिल फॉर इनवायरो लीगल एक्शन बनाम भारतसंघ''[6] का मामला एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ''[7] के मामले का अनुसरण दिखता है। ''अजीत मेहता बनाम राजस्थान राज्य''[8] मामले में माननीय न्यायालय ने अजीत मेहता के प्रयास की प्रशंसा करते हुए सम्प्रेक्षण किया कि यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि ओर अपनाया जाता है। बहुत कम व्यक्ति हो आगे आते है और इसका विरोध करते है।'' किंकरी देवी बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य नामक मसले मे एक जनहित याचिका द्वारा न्यायालय की जानकारी में आया कि ''चूने के पत्थरों के अवैज्ञानिक और अनियंत्रित खनन से शिवालिक पहाड़ियां क्षतिग्रस्त हो रही हैं जिससे पारिस्थितिकीय पर्यावरण और वहां के निवासियों को खतरा उत्पन्न हो गया है। उच्चतम न्यायालय के अधिकथित सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए उच्च न्यायालय ने खनन क्रिया को रोकने का आदेश जारी किया। इन दोनों ही मामलों ने न्यायालयों के विवेकपूर्ण निर्णय पर्यावरण व जनस्वास्थ्य के प्रति सराहनीय रहे। विकास कार्यों का हवाला दिया जा कर कई बार उद्योगपति या व्यापारी गलत तथ्य प्रस्तुत करके मामलों को छिपाकर नवीन उद्योग इकाईयां स्थापित करने के कई समय बाद किसी वाद के उभरने पर जब पुनः विचार कर न्यायालय तत्संबंधी निर्णय सुनाते है तो यह मानते है कि अनुज्ञा–पत्र जारी करते समय कुछ तथ्यों को ध्यान में नहीं रखे जाने की स्थिति से कभी–कभी कुछ विषम परिस्थितियां बन जाती है।'' रूरल लिटिगेशन एण्ड इनटाइटिलमेन्ट केन्द्र देहरादून बनाम उत्तर प्रदेश राज्य'' को मामला इस संबंध में एक उदाहरण है। यहां पर उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 12.03.1985 के अन्तरिम आदेश और दिनांक 19.10.1987 के अन्तिम आदेश के तारतम्य में फिर विवाद उत्पन्न हुआ। स्थिति प्रश्नमयी है। उटी की दून घाटी क्षेत्र के आरक्षित वन में या अन्य वन क्षेत्र में कठोर नियन्त्रण के बावजूद खनन कार्यों का संचालन उत्तर प्रदेश वन अधिनियम के उल्लंघन के साथ–साथ वन की प्राकृतिक वृद्धि की पुर्नस्थाना के लिये घनिप्रद होगी कि नहीं। एक और भी प्रश्न उठा कि क्या पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 के पारित हो जाने के बाद उच्चतम न्यायालय का क्षेत्राधिकार समाप्त हो गया है? इस स्थिति पर एक त्वरित न्यायिक प्रक्रिया के दौरान न्यायालय ने माना कि हम लोग इस बात से संतुष्ट है कि यदि खनन गतिविधि की अनुमति भविष्य में सीमित सीमा तक भी पारिस्थितिकीय तंत्र व पर्यावरण के अनुकूल नहीं है और इस क्षेत्र की प्राकृतिक

---

1 सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908, धारा 91.

2 दंड प्रक्रिया संहिता, 1973; धारा 133–144

3 ए.आई.आर. 1982 इलाहाबाद, 285.

4 ए.आई.आर. 1959 पंजाब एवं हरियाणा 399

5 ए.आई.आर. 1987 एस.सी. 1086.

6 ए.आई.आर. 1996, एस.सी. 1446.

7 ए.आई.आर. 1987 एस.सी. 1080.

8 ए.आई.आर. 1988 एस.सी. 2187.

शांति, जो सामान्य दशाओं में इस क्षेत्र की विशिष्ट विशेषता है पुनस्थापित नहीं की जा सकती तो अन्तिम रूप से यह निर्णय है कि इस क्षेत्र में खनन कार्यवाही पूर्णतः बन्द कर दी जाय।'' इस प्रकार के आदेशों से सिद्ध होता है हमारी न्याय व्यवस्था नागरिकों व पर्यावरण एवं राष्ट्रीय हितों के साथ में वैश्विक पर्यावरण व भावी पीढ़ियों के लिए सर्दव सदाचारपूर्वक, विवेकवान निर्णयों से पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान देती है।

न्यायव्यवस्था द्वारा सदैव एक विशिष्ट कार्यप्रणाली को जनहितार्थ एवं कल्याणकारी योजना को अपनाया गया है; जब भी किन्हीं कारणों से किसी मामले में सुचारू कार्य होने की स्थिति नहीं बन पाती है और अन्यत्र कहीं से उससे सम्बंधित किसी पक्ष द्वारा आपत्ति या न्यायिक अनुमति या फिर सर्वेसर्वा के रूप में न्यायालयों के दरवाजों पर आशान्वित होकर दस्तक दी तब–तब न्यायाधरों से ऐसे मामलों की बात यदि करें तो वृहद्तर भारत के भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक विभिन्नताओं के परिवेश में सदा किसी न किसी रूप से वाद–विवाद उभरते रहते है तो ऐसे मामलों में पर्यावरण व जनसामान्य के साथ ही राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्यों को ध्यान में रखते हुए युक्ति–युक्त एवं सार्थक भूमिका निभाई है। भारत में अभी तक कई मामलों में पर्यावरण परिप्रेक्ष्यों के अन्तर्गत न्यायिक अवधारणा की सहायता मांगी गई और सीधे तौर पर न्यायधरों ने अपना विशिष्ट योगदान दिया। इतने विशाल भू–भाग की पारिस्थितिकी को पर्यावरण संतुन के साथ तारतम्यता प्रदान करने में जन सामान्य तक अपनी पहुंच सिद्ध की। जहां एक ओर सरकारें अपने लोकतांत्रिक आधारों पर कार्य करने में कतिपय कारणों से सार्थकता सिद्ध कर पाने में समर्थ नहीं रह पाती या कहीं–कहीं पर औद्योगिक सम्पदाऐं अति विकासोन्मुख होकर सरकारी आधारों का उल्लंघन करती हुई पाई जाती है और इन कारणों से पर्यावरण स्वास्थ्य को हानि पहुंच रही होती है तो न्यायिक हस्तक्षेप द्वारा बाद को सम्मत शैली से सुलझाया जाता है। न्यायालयों ने समय–समय पर पर्यावरण संरक्षण संबंधी मामलों पर त्वरित कार्यवाहियों को मंच प्रदान किया। न्यायालयों ने अपने होने का अहसास न्याय की मांग के समय उचित रूप से करवाया। यदि पर्यावरण प्रदूषण के मामलों में न्यायिक हस्तक्षेप ना हो तो शायद अभी तक शोषण वर्ग द्वारा हमारे पर्यावरण की धज्जियां उड़ा दी गई होती।

न्यायालयों की भूमिका पर्यावरण संरक्षण के लिहाज से अति महत्वपूर्ण हैं और न्यायिक अवधारणाओं को आधार में रखते हुए पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में हमारे लिए न्यायालयों का महत्व अति महत्वपूर्ण है। सरकारी प्रयासों को न्याय क्षेत्र का छात्र अन्यत्र संकटों से बचाता है, और लोकतन्त्र के एक महत्वपूर्ण स्तम्भ की भूमिका को सार्थक सिद्ध किया।

♦❐♦